न्याय की नौटंकी

नवंबर १९८४ में हुए दंगों पर आयुक्त मिश्रा कमीशन की रिपोर्ट की एक आलोचना

पीपुल्स यूनियन फ़ार डैमोक्रैटिक राइट्स
पीपुल्स यूनियन फ़ार सिविल लिबर्टीज़
दिल्ली
मई १९८७

क्रम

क्रम संख्या			पृष्ठ
1.	पृष्ठभूमि	...	1
2.	कार्यवाही	...	3
3.	रिपोर्ट	...	5
4.	सुझाव	...	11
5.	निष्कर्ष	...	14

तू इधर-उधर की
बात न कर
यह तो बता
काफ़िला लुट कैसे

31 अक्तूबर 1984, प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद से 7 नवम्बर तक दिल्ली तथा देश के कई भागों में व्यापक दंगे हुए। इसमें हजारों सिख मारे गये। इन घटनाओं के एक हफ्ते के अन्दर ही 17 नवम्बर को पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स (पी०यू०डी०आर०) और पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज (पी०यू०सी० एल०) ने "दोषी कौन?" नाम से एक रिपोर्ट छापी। रिपोर्ट के अनुसार यह मारकाट एक सुसंगठित योजनाबद्ध कार्रवाई थी और इनमें कांग्रेस (आई) के बड़े नेताओं और प्रशासन अधिकारियों का सक्रिय योगदान रहा था। विभिन्न अखबारों की रिपोर्टें भी इसी नतीजे पर पहुंची थीं। इसके अलावा बहुत से स्वतन्त्र दलों और संगठनों, जैसे सिटीजन्स कमीशन, सिटिजन्स फार डेमोक्रेसी, नागरिक एकता मंच, साम्प्रदायिकता विरोधी आन्दोलन, इत्यादि ने भी अपनी-अपनी छानबीन से इसकी पुष्टि की। इन सबने और विरोधी राजनीतिक पार्टियों, अखबारों और जनमत ने यह मांग की कि इस मामले की सार्वजनिक जांच करवाई जाए। आखिकार सरकार ने दबाव में आकर दिल्ली, कानपुर और बोकारो के मारकाट की जांच-पड़ताल के लिए कमीशन बैठाया। जिसके अध्यक्ष बनाये गये न्यायाधीश रंगनाथ मिश्रा जो सुप्रीम कोर्ट के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश हैं। इस कमीशन की रिपोर्ट 23 फरवरी 1987 को संसद में पेश की गई। हम इस रिपोर्ट का विश्लेषण, खासकर उस हिस्से का जो दिल्ली की घटनाओं से सम्बन्धित है—आपके सामने रख रहे हैं।

पृष्ठभूमि

श्रीमति इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद जो कत्लेआम हुआ उसकी जांच पड़ताल की मांग देश के विभिन्न जनवादी तबकों ने की। इसकी पहल पी० यू० डी० आर० और पी० यू० सी० एल० की रिपोर्ट ने की। इन्होंने हाई कोर्ट में जांच के लिए जन हित याचना दायर की पर इसे—नामंजूर कर दिया गया। सरकार ने भी किसी तरह की जांच कराने से मना कर दिया। प्रधानमन्त्री ने खुद एक समय पर यह कहा कि जांच-पड़ताल से कोई फायदा होने वाला नहीं है। इस बीच पंजाब में इस बात को लेकर और गर्मागर्मी बढ़ी। राजनैतिक दलों और सिख समुदाय की प्रतिनिधि संस्थाओं ने यह ऐलान किया कि जब तक इन घटनाओं की जांच नहीं होगी पंजाब की हालत सुधर नहीं सकती। आखिरकार 26 अप्रैल 1985 को धारा 3, कमीशन्स एनक्वायरी ऐक्ट, 1952, के अन्तर्गत जसटिस रंगनाथ मिश्रा कमीशन की नियुक्ति की गई। पहले तो इन्हें सिर्फ दिल्ली में हुए दंगों की जांच का काम सौंपा गया। बाद में जब प्रधानमंत्री और दिवंगत नेता एन०एस० लौंगोवाल के बीच समझौता हुआ तो कानपुर और बोकारो की घटनाओं को भी जांच में जोड़ दिया गया। बाद में चास तेहसील को भी, जो बोकारो की सीमा पर है, इसमें जोड़ा गया। हालांकि जांच कमीशन का गठन अपने आप में एक अच्छा कदम था, पर जिस तरह पहले सरकार ने इस मांग को अनसुना किया और बाद में मान लिया, इससे एक बुनियादी सवाल उठता है। शुरू में यह मांग एक जनवादी मांग थी जो हमारे संविधान में दिये गए आम आदमी के मूल अधिकारों—जीवन का अधिकार और स्वतन्त्रता का अधिकार—को लेकर उठाई गई थी। बाद में साम्प्रदायिक दलों ने इसे साम्प्रदायिक मांग की तरह उठाया और इसी आधार पर सरकार ने इसे माना भी। सरकार का यह रवैया हमारे देश के धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त के लिये घातक है क्योंकि इससे सिर्फ साम्प्रदायिक शक्तियों को बढ़ावा मिलता है।

पिछले बीस सालों में कमीशन्स एनक्वायरी एक्ट के अन्तर्गत साम्प्रदायिक दंगों

की जांच के लिए दस से भी ज्यादा कमीशन बैठाए जा चुके हैं। इनमें प्रमुख हैं मालेगांव (1967), जैनपुर और सबेलपुर (1967), रांची-हाटिया (1967), अहमदाबाद (1969), भिवन्डी (1971), जमशेदपुर (1979), और हैदराबाद (1984)। पर इन सबमें और मिश्रा कमीशन में दो खास फर्क हैं। पुराने सभी कमीशन दंगों के फौरन बाद नियुक्त किये गए थे। सिर्फ मालेगांव कमीशन दंगों के एक महीने के बाद गठित हुआ था। पर मिश्रा कमीशन की नियुक्ति में पूरे छः महीने लग गए—नवम्बर 1984 के बाद अप्रैल 1985 में जाकर कमीशन बैठाया गया। इसके बाद उनकी पहली सुनवाई 29 जुलाई को ही हो पाई। एक बैठक के बाद कमीशन शायद फिर सो गया। दूसरी सुनवाई 2 सितम्बर को हुई। 11 सितम्बर को कमीशन ने मांग की कि धारा 5-ए के तहत उन्हें अपनी छानबीन करने के लिए एक एजन्सी दी जाए। पर सरकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया। 5 नवम्बर को कमीशन ने दिल्ली प्रशासन और केन्द्रीय सरकार को कड़े शब्दों में आदेश भेजा कि उन्हें एजन्सी दी जाए। इस तरह कमीशन को ठीक से काम शुरू करने में पूरा एक साल लग गया। फिर रिपोर्ट पेश करने में दस महीने लगे, जो अगस्त 1986 में सरकार को दी गई। इसके बाद छः महीने सरकार के पास पड़े रहने के बाद फरवरी 1987 में यह रिपोर्ट संसद में रखी गई।

कमीशन के बारे में दूसरी मुख्य बात थी—उसका दायरा और उद्देश्य। सभी पहली कमीशनों के सामने मुख्य सवाल होता था "दंगों के करणों और घटनाओं के क्रम की जांच-पड़ताल करना।" इस बार कमीशन का लक्ष्य था "प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद हुए दंगों को लेकर जो संगठित हिंसा की वारदातों का इल्जाम लगाया गया है उनकी जांच करना।" इसका साफ अर्थ है कि यह कमीशन दंगों के कारणों की जांच करने के लिए नहीं था। इसका मकसद ही दूसरा था। (हालांकि कानपुर, बोकारो और चास के दंगों के बारे में इसका काम "दंगों की जांच करना ही था।) पहला यह कि इस कमीशन का उद्देश्य ही अजीबो-गरीब था। दूसरा आम जनता में यह विश्वास बन गया था कि शासक पार्टी का दंगों में भारी हाथ रहा था। तीसरा यह कि कमीशन नियुक्त करने में सरकार ने बहुत हीला-हवाला और देरी की थी। इन सब कारणों से जनता की नजरों में, खासकर दंगा पीड़ितों की नजरों में कमीशन की प्रतिष्ठा गिर चुकी थी।

कार्यवाही

कमीशन का मुख्य काम था दंगों में संगठित हिंसा की वारदातों के इल्जाम की जांच-पड़ताल करना। ये "इल्जाम" सबसे पहले पी०यू०डी० आर० और पी० यू० सी० एल० ने लगाये थे। पर दोनों संगठनों को कमीशन की कार्यवाही में भाग लेने की इजाजत नहीं दी गई। इसी तरह नागरिक एकता मंच को भी, जिसने पीड़ितों की सहायता करने और उनके पुनर्वास के लिए बहुत काम किया था, कमीशन के सामने अपनी बात कहने और कार्यवाही में हिस्सा लेने का "सीमित अवसर" ही मिल पाया। पर सिटिजेन्स जस्टिस कमेटी (सी० जे० सी०) शिरोमणि अकाली दल (लोंगोवाल), और दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी को कार्यवाही में हिस्सा लेने का मौका मिला। पर पहले दो संगठनों ने मजबूर होकर अपने आप को कमीशन की कार्यवाही से अलग कर लिया क्योंकि उन्हें कमीशन के काम करने के ढंग से शिकायत थी। उनका कहना था कि कमीशन की जांच गुप्त नहीं रखी जानी चाहिये और न ही अखबारों को इसकी रिपोर्ट छापने पर मनाही होनी चाहिये। कमीशन की रिपोर्ट में सी० जे० सी० के भाग न लेने के फैसले को "गैर-जिम्मेदाराना" कहा गया है पर यह बताने की जरूरत नहीं समझी गई है कि सी० जे० सी० ने ऐसा क्यों किया। रिपोर्ट में इस बात का भी जिक्र नहीं किया गया है कि अकाली दल और नागरिक एकता मंच ने भी कमीशन के साथ काम करने से इंकार कर दिया था। दूसरी ओर चार ऐसे संगठनों को जिनके बारे में किसी को भी ठीक से जानकारी नहीं है, कमीशन की कार्यवाही में हिस्सा लेने की अनुमति मिल गई और वे शुरू से आखिर तक इसमें भाग लेते रहे।

जांच के दौरान कमीशन ने जिस ढंग से काम किया, उसके बारे में भी काफी सन्देह पैदा होता है। कमीशन को 2,905 शपथ-पत्र प्राप्त हुए पर सबूत के लिए सिर्फ 128 चुने गए। यह कहीं स्पष्ट नहीं है कि यह चुनाव किस आधार पर किया गया। कई ऐसे शपथ-पत्रों को नहीं चुना गया जो कमीशन के नतीजे का खण्डन करते थे खासकर कांग्रेस पार्टी की भूमिका को लेकर। इसके अलावा

कमीशन की अपनी एजेन्सी ने केवल 30 शपथ-पत्रों की जांच करने का फैसला किया। जांच भी सिर्फ पत्रों में दिये तथ्यों की शिनाख्त तक ही सीमित रही। स्वतंत्र रूप से कोई छानबीन नहीं की गई।

दूसरे, कार्यवाही में हिस्सा लेने वालों ने कई बार जरूरी दस्तावेज देखने की मांग की पर उनकी मांग ठुकरा दी गई। जब कुछ दस्तावेज मंगाए भी गये तो सभी को नहीं दिखाये गए। फिर जब कमीशन ने हिस्सेदारों को सरकारी अफसरों से पूछताछ करने की इजाजत भी दी तो कई जरूरी प्रश्नों को 'गैर-जरूरी' या 'जनता के हित में नहीं' कहकर नामंजूर कर दिया गया। सी०जे० सी० का कहना है कि उन्होंने कई बार दंगों के दौरान दंगाई भीड़ों पर पुलिस के गोली चलाने की बात को लेकर सवाल उठाए पर उन्हें "गैरकानूनी" कहकर नामंजूर कर दिया गया।

कमीशन की कार्यवाही में सबसे बड़ी शिकायत हुई बयानों को लेकर। कुछ मामलों में बयान लेने की इजाजत दी गई। कुछ में नहीं। बयान देने वालों से जिरह करने का अवसर भी कुछ को नहीं। खास तौर से कुछ उच्च अधिकारियों के बयान लोगों से गुप्त रखे गये। रिपोर्ट कुल 11 अफसरों को "गवाहों के अलावा सरकारी अफसर" यानि एक अलग श्रेणी में रखा गया। यह मनमानी न सिर्फ कानूनी तौर-तरीकों और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है बल्कि कमीशन के खुद के निर्धारित किये हुए नियमों के भी विरुद्ध है। कमीशन्स एन्क्वायरी ऐक्ट की दफा 8 के "कार्यवाही के नियम" के अन्तर्गत जो कमीशन के सचिव ने जुलाई 1985 को जारी किये थे, खण्ड 6 में यह साफ लिखा है कि हर पार्टी को जिरह करने का अधिकार होगा। इसके उल्लंघन से सी.जे.सी. की यह शिकायत यही लगती है कि "गुप्त कार्यवाही में भी गुप्त तरीके से काम हो रहा है।"

कमीशन के मनमाने रवैये की वजह से यह जांच एक तरफा रही। इसीलिए कुल 2905 शपथ पत्रों में से 78% (2266) "पीड़ितों के खिलाफ दिये गये शपथ पत्र" की श्रेणी में दिखाये गये हैं। शायद इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है कि इतने व्यापक दंगों में जिसमें हजारों बेकसूर लोग मारे गये, एक कमीशन ने "पीड़ितों के खिलाफ शपथ पत्र" की एक अलग श्रेणी की शुरूआत की है।

जिन हालात में कमीशन बना था उससे जनता के हृदय में वैसे ही इसके प्रति सन्देह पैदा हो गया था। इसके बाद इसके काम करने के ढंग से इसमें रही सही आस्था भी खत्म हो गई। सबको पहले से ही अंदेशा हो गया कि इसकी रिपोर्ट कैसी होगी।

रिपोर्ट

कमीशन की रिपोर्ट दो भागों में है। पहला भाग दो खण्डों में बंटा है। पहले भाग में घटनाओं का खाका दिया है, शपथ-पत्रों की छानबीन की गई है, पुलिस और प्रशासन के कार्य की जाँच पड़ताल है और दिल्ली, बोकारो और कानपुर में हुए दंगों का मूल्यांकन किया गया है। दूसरे भाग में परिशिष्ट हैं जिनमें शपथ-पत्रों का विश्लेषण, कोर्ट में चल रहे मुकदमों की सूची और पीड़ितों के पुनर्निवास सम्बन्धी सरकारी पत्र दिये हैं।

रिपोर्ट का गठन जिस तरह से हुआ है और उसे जैसे पेश किया गया है, उसके बारे में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। हालांकि रिपोर्ट अध्यायों में बंटी है और हरेक का अलग विषय है, पर कमीशन ने इसकी परवाह न करते हुए जहाँ जो मन में आया लिख दिया है। खासकर प्रशासन और कांग्रेस (आई) की भूमिका को लेकर बार-बार सफाई पेश की गई है। फलस्वरूप रिपोर्ट में वही बातें कई बार दोहराई गई हैं। इसके अलावा इसमें कई बातें ऐसी हैं जो एक दूसरे का खंडन करती हैं। इस कारण रिपोर्ट अनमेल और तर्क हीन-सी लगती है।

रिपोर्ट में जगह-जगह पर विभिन्न चिन्तकों लेखकों और दार्शनिकों के कथनों का अप्रासंगिक और बेमतलब प्रयोग किया गया है। सीधी-सादी बात कहने के लिए भी लम्बे-चौड़े उपदेश दिये गये हैं! ताज्जुब की बात है कि विधवाओं और अनाथों को न्याय दिलवाने के लिए कमीशन को आदम स्मिथ के कथन का सहारा लेना पड़ा कि "दुष्ट व्यक्तियों को दण्ड देना इन्सानी प्रवृत्ति है।" ऐसे और कई कथन अप्रासंगिक तरीके से इस्तेमाल हुए हैं। कहीं सोलहवीं सदी के जुर्म और दण्ड विधान का जिक्र है, कहीं अमरीकी टेलीविजन पर दिखाई जाने वाली हिंसा के बारे में सीनेट कमिटी की रिपोर्ट का। कहीं कार्ल मार्क्स के लेखों से उदाहरण लिये गए हैं और कहीं रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर उपदेश है। जितना समय और मेहनत कमीशन ने इन सब पर लगाया यदि उसे पीड़ितों के शपथ-पत्रों में कही बातों पर लगाते तो शायद कुछ काम की बात

निकल कर आ सकती।

इसके अलावा रिपोर्ट में इतनी गलतियां हैं कि लगता है कमीशन को कुछ साधारण मूल बातों का भी पता नहीं है। दिल्ली में पुलिस क्षेत्रों की संख्या पाँच नहीं छह है। फिर हर क्षेत्र परिक्षेत्र (रेंज) नहीं बन जाता बल्कि तीन क्षेत्र मिल कर एक परिक्षेत्र बनता है। कमीशन के अनुसार परिक्षेत्र का नियन्त्रण डी० आई० जी० के हाथ में होता है। इसे यह भी नहीं मालूम कि डी० आई० जी० की पद्धति 1978 में हटा दी गई थी। नई दिल्ली 1969 में पुलिस क्षेत्र घोषित की गई न कि 1986 में। दिल्ली के बारे में कमीशन का कहना है कि वह संसार के सबसे तेजी से बढ़ने वाले शहरों में से है। पिछले चार दशकों की जन गणना के अनुसार भारत में 2.5 लाख से ज्यादा आबादी वाले शहरों में कम-से-कम 20 शहर ऐसे हैं जिनकी वृद्धि-दर दिल्ली से ज्यादा है। महानगरों (10 लाख आबादी) में वृद्धि-दर में भी दिल्ली प्रथम नम्बर पर नहीं रही है। कमीशन को यह भी नहीं मालूम कि सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985 में खत्म नहीं हुई बल्कि 1990 तक चलेगी।

कमीशन का यह विचार है कि दिल्ली के दंगे अनायास ही शुरू हुए। बाद में असामाजिक तत्वों ने हालात पर कब्जा कर लिया और संगठित हिंसा की वारदातें हुईं। उसका कहना है कि स्थानीय क्षेत्रों की पुलिस चौकियों ने प्रधान कार्यालय को सूचना देने में ढील की और इसी कारण न सिर्फ पुलिस प्रशासन, बल्कि दिल्ली प्रशासन और केन्द्रीय सरकार भी समय पर कदम न उठा सकी। उसने पुलिस को इसके व्यवहार के लिये दोषी माना है पर प्रशासन को सारी जिम्मेदारी से बरी कर दिया है। कमीशन के अनुसार कांग्रेस (आई) का दंगों को भड़काने और दंगाईयों की मदद करने में कोई हाथ नहीं था हालांकि इसने सामान्य दर्जे के कुछ कांग्रेसियों को दोषी ठहराया है। हम अपनी रिपोर्ट में कमीशन के मुख्य निष्कर्षों, खासकर असामाजिक तत्वों, कांग्रेस (आई), प्रशासन और पुलिस की भूमिकाओं से सम्बंधित निष्कर्षों पर विचार करेंगे।

असामाजिक तत्व और कांग्रेस (आई) की भूमिका

कमीशन का मत है कि कुछ ऐसा माहौल बन गया कि दंगे अपने आप ही भड़क उठे। पर बाद में स्थिति बदल गई और दंगों ने संगठित हिंसा का रूप ले लिया। यह तब हुआ जब असामाजिक तत्वों ने जगह-जगह पर अपना कब्जा जमा लिया। कमीशन लिखता है: "कहते हैं शैतान का भी काम करने का एक ढंग होता है और यही असामाजिक तत्वों ने भी किया। इन्होंने संगठित रूप से दंगों का संचालन किया।...पर यह हिंसा किसी राजनीतिक पार्टी या किसी विशेष दल के नेतृत्व में नहीं हुई बल्कि असामाजिक तत्वों द्वारा की गई।...जो दिल्ली में काफी ताकतवर और खतरनाक रूप से बढ़े हैं।" इसके अनुसार इन

तत्वों की वृद्धि हुई है दिल्ली की बढ़ती हुई आबादी, खासकर औद्योगिक मजदूरों, की आबादी से। इसके अलावा शहर में जुर्म की वारदात बढ़ी है, नैतिक मूल्यों में गिरावट हुई है और पुलिस का बन्दोबस्त शहर की जरूरत को देखते हुए काफी नहीं है। इन सब कारणों से दुष्ट तत्वों को बढ़ावा मिला है।

कमीशन के ये तर्क कहां तक सही हैं? दिल्ली की आबादी के बारे में हम पहले ही कह चुके हैं कि यह और शहरों से ज्यादा नहीं है। जहां तक औद्योगिक मजदूरों का सम्बन्ध है दिल्ली में सबसे ज्यादा बड़ोतरी मजदूरों की नहीं बल्कि आफिस जाने वालों और व्यवसायों में लगे लोगों की हुई है।

यह कहना भी सही नहीं है कि पुलिस सेवा आबादी के अनुपात में कम है। सबसे अहम बात तो यह है कि ये सब बातें अन्य कई शहरों पर भी लागू होतीं हैं जहां सिखों की संख्या भी काफी है। पर उन शहरों में ऐसा कोई कत्लेआम नहीं हुआ। कमीशन ने खुद एक जगह पर इस बात की सराहना की है। इन आम बातों के अलावा कमीशन ने यह समझाने की कहीं भी कोशिश नहीं की है कि 'असामाजिक तत्वों' से उसका क्या अभिप्राय है। कहीं-कहीं तो इस शब्द का इस्तेमाल बड़े गोलमाल तरीके से किया गया है। जैसा कि एक जगह पर लिखा है: "दिल्ली में संगठित हिंसा की वारदात असामाजिक तत्वों द्वारा की गई। और दंगों में हजारों उन लोगों ने भी भाग लिया जो सचमुच में असामाजिक की श्रेणी में नहीं आते। इनमें से बहुत से कांग्रेस (आई) पार्टी के सामान्य दर्जे के सदस्य और समर्थक थे।" दंगों में भाग लेने वाली भीड़ में सामाजिक और असामाजिक तत्वों में क्या भेद था या कांग्रेस के दंगाई असामाजिक की श्रेणी में हैं या नहीं, इस सबका विश्लेषण कहीं नहीं किया गया है। फिर भी कमीशन ने साफ तौर से कांग्रेस (आई) पार्टी को दंगों की जिम्मेदारी के इल्जाम से बरी कर दिया है। कमीशन के इस निष्कर्ष के कई आधार हैं:

(1) अफसरों के बयान के आधार पर:
उपराज्यपाल श्री गवाई और डिप्टी कमिश्नर श्री आर० एस० सेठी के बयान (रिपोर्ट में उन्हें जिला न्यायाधीश समझा गया है)

(2) कमीशन की एजेन्सी ने जिन चुनी हुई घटनाओं की जाँच की उनमें उसे पूरे प्रमाण नहीं मिले।

(3) कमीशन का कहना है कि अगर कांग्रेस (आई) ने दंगे कराए होते तो कोई भी क्षेत्र बचा नहीं रहता जबकि अब कई जगह दंगे नहीं हुए।

(4) जिस समय दंगे हुए उसी दौरान कांग्रेस (आई) पार्टी के नेताओं ने साम्प्रदायिकता की निन्दा करते हुए कई वक्तव्य दिये और प्रस्ताव पास किये।

इसके बावजूद भी कमीशन ने कांग्रेस (आई) के 19 सदस्यों पर दंगों में भाग लेने का दोष लगाया है। इसमें से 6 वही लोग हैं जिनका नाम पी०यू०डी०आर—

पी० यू० सी० एल० रिपोर्ट में था। पर ध्यान देने की बात है कि कमीशन की रिपोर्ट में इन लोगों का नाम नहीं लिया गया है। इन 19 लोगों के नाम वास्तव में दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबन्धक कमिटी ने अपने लिखित वक्तव्य में दिया था और कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में सिर्फ इसका हवाला दिया है। प्रबन्धक कमिटी के इस दस्तावेज में विभिन्न क्षेत्रों में हुए दंगों के संगठनकारियों की एक सूची दी गई है। परन्तु यह इनकी दूसरी सूची है उसी दस्तावेज में थोड़ा पहले एक पहली सूची भी है जिसमें दंगों के "प्रमुख संगठनकर्ताओं" के नाम हैं। इसमें कांग्रेस (आई) के 13 नेतागण शामिल हैं। कमीशन ने दूसरी सूची का तो जिक्र किया है पर पहली को बिल्कुल नजरअन्दाज कर दिया है।

कमीशन ने खास तौर से श्री एच० के० एल० भगत के ऊपर लगाए गए इल्जामों की बात उठाई है। रिपोर्ट में यह सफाई पेश की गई है कि यह अफवाह थी कि श्री भगत पर इल्जाम लगाया जाएगा शायद इसलिए हजारों लोगों ने शपथ पत्र दायर किये कि श्री भगत का दंगों में कोई हाथ नहीं था। अन्य शपथ पत्रों की जिनमें उनको दोषी ठहराया गया था, कमीशन ने अपनी एजेन्सी से छानबीन करवाई! और उनके खिलाफ कोई "ठोस प्रमाण न मिल पाने" की वजह से उन्हें निर्दोष साबित कर दिया। पर रिपोर्ट के दूसरे भाग में (परिशिष्टों में) उन 30 घटनाओं की सूची है जिनकी एजेन्सी ने छानबीन की थी। ताज्जुब की बात है कि उनमें से एक में भी श्री भगत का नाम नहीं है। फिर पहले भाग में उन्हें "ठोस प्रमाण न मिलने" की वजह से कैसे निर्दोष करार दिया गया? दूसरे भाग में श्री भगत का नाम तो नहीं है; पर श्री सज्जन कुमार का नाम जरूर है हालांकि पहले भाग में उनका जिक्र कहीं नहीं आया! शायद उन्हें परिशिष्ट में ही निर्दोष साबित कर दिया गया है। इसके अलावा मुख्य रिपोर्ट में दो कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के नाम हैं—डा० अशोक और श्री हिम्मत राय। इनका नाम शपथ पत्रों में आया था पर इन पत्रों की (2367 और 2706) कोई छानबीन करने की जरूरत नहीं समझी गई। तो इसका मतलब है कि रिपोर्ट के पहले भाग में एक कांग्रेस (आई) नेता का जिक्र करके उसी वहीं बरी कर दिया गया है। ठीक इसके विपरीत दूसरे नेता का पहले भाग में कोई जिक्र नहीं है। उसे दूसरे भाग में लाकर वही सफाई की चिट थमा दी गई है। दो अन्य नेताओं का पहले भाग में जिक्र हैं पर उनकी सफाई कहीं पेश नहीं की गई है। कमीशन के अनुसार कांग्रेस (आई) के 19 सदस्य दोषी पाए गए हैं पर उनके नाम रिपोर्ट में नहीं हैं। और इस सबके आखिर में कांग्रेस पार्टी को पूरी तरह से निर्दोष करार दिया गया है।

इस सबके बाद और कुछ कहने की जरूरत ही नहीं रह जाती।

प्रशासन की भूमिका

दिल्ली प्रशासन और केन्द्रीय सरकार की भूमिका के प्रश्न पर कमीशन ने पूरे तौर से छानबीन नहीं की है। कमीशन का यह निष्कर्ष है कि प्रशासन के बड़े अधिकारियों और प्रधान मंत्री तथा गृहमंत्री को खासकर पहले दो दिनों के दंगों और लूटपाट का पता ही नहीं चला। जो प्रमाण कमीशन के सामने पेश किये गए हैं उनसे य जाहिर होता है कि कई प्रमुख नागरिकों ने यह बात उन तक पहुँचाई थी! इस बात का भी प्रमाण है कि 31 अक्टूबर को ही प्रधान मंत्री के सचिवालय और गृह मंत्रालय के उच्च अधिकारियों की एक बैठक हुई थी। कमीशन ने उप-राज्यपाल श्री गवाई के स्वास्थ्य के बारे में विशेष चिन्ता जाहिर की है। कहा गया है कि उपराज्यपाल को दंगों से कुछ समय पहले दिल का गंभीर दौरा पड़ा था और इस कारण उनका पद किसी और को सौंपा जाना चाहिये था। कमीशन ने अपने वक्तव्य में कहा है कि दिल्ली प्रशासन को एक "योग्य, चुस्त, चतुर, दृढ़ संकल्प, अनुभवी, दूरदर्शी और बुद्धिमान" प्रशासक की जरूरत है। यहाँ पर यह बताना अनुचित न होगा कि पद छोड़ने के बाद श्री गवाई कांग्रेस पार्टी के सदस्य हो गए हैं।

इसी तरह कमीशन ने यह कहा कि शहर के अलग-अलग हिस्सों में होने वाली वारदातों की खबर उसी समय पुलिस प्रधान कार्यालय तक नहीं पहुँचाई गई और इसी वजह से सेना को बुलाने में देर हुई। इस गलती के लिये उसने उपराज्यपाल और पुलिस कमिश्नर को दोषी ठहराया है।

जहाँ तक दंगों में दिल्ली परिवहन निगम (डी० टी० सी०) की भूमिका का सवाल है कमीशन का मानना है कि निगम ने दंगाईयों को कोई सहायता नहीं की। यद्यपि कमीशन ने नोट किया है कि निगम के कर्मचारियों को ताकीद की गई थी कि किसी को न बताएं कि दंगों के दौरान बसों का कैसे और कहाँ-कहाँ प्रयोग हुआ। कमीशन ने यह भी कहा कि निगम के रजिस्टरों में अदला-बदली की गई थी। पर इसके बावजूद भी कमीशन ने निगम को निर्दोष बताया है।

पुलिस की भूमिका

अगर किसी संस्था की भूमिका के बारे में कमीशन ने साफ कुछ कहा है तो वह है दिल्ली पुलिस। रिपोर्ट में पुलिस की कई शब्दों में निन्दा की गई है। पर यहाँ भी एक अहम फर्क किया गया है। कमीशन के अनुसार उच्च पुलिस अधिकारियों का केवल दोष यह था कि वे स्थिति का सही अंदाजा नहीं लगा पाए जबकि नीचे स्तर के पुलिस कर्मचारियों ने असरदार ढंग से उत्पात को रोकने की कोशिश नहीं की। उच्च पुलिस अधिकारियों के बयान के आधार पर कमीशन इस

नतीजे पर पहुँचा है कि स्थानीय पुलिस चौकियों ने प्रधान कार्यालय को बिगड़ती हुई हालत के बारे में सूचना ही नहीं दी। कमीशन ने यह भी पाया कि कुछ वर्दी-धारी पुलिस कर्मचारियों ने लूटपाट में हिस्सा लिया। पर इनकी संख्या "बहुत कम" थी। एक अन्य स्थान पर कमीशन ने कहा कि ऐसा हो सकता है "कई जगहों पर पुलिस असामाजिक तत्वों के साथ मिली हुई हो।"

इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न को कमीशन ने ठोस और जिम्मेदार ढंग से छान-बीन नहीं की है कि क्या पुलिस पर किसी तरह का राजनीतिक दबाव डाला गया था। एक जगह यह कहा गया है कि कमीशन ने अच्छी तरह तहकीकात की पर पुलिस अधिकारियों ने यही कहा कि उन पर कोई राजनीतिक दबाव नहीं था जिससे उनके रवैये और काम पर कोई असर पड़ा हो। कमीशन ने यह दावा किया है कि उसने इस पैने ढंग से अफसरों से पूछ-ताछ की कि अगर राजनीतिक दबाव की बात सच होती तो जरूर जाहिर हो जाती। पर "पैना ढंग" क्या था, इसका उदाहरण थोड़ी देर बाद ही मिलता है। कमीशन के शब्दों में :

"कमीशन ने प्रश्न किया था कि पुलिस ने काम में लापरवाही की या जान-बूझ कर तमाशा देखती रही। श्री सेठी ने उत्तर दिया, "मुझे नहीं लगता कि पुलिस ने खुल्लमखुल्ला दंगों में हिस्सा लिया था। मेरे ख्याल में किसी दबाव में आकर उन्होंने अपनी ड्यूटी निभाने में ढील की।" जब कमीशन ने उनसे "दबाव" का अर्थ पूछा तो उनका जवाब था—"मेरा मतलब स्थानीय राजनीतिक दबाव से था। पर मेरे पास इसका ठोस सबूत नहीं है इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि दबाव कहाँ से आया। पर यह बात सही है कि पुलिस ने अपना काम नहीं किया। मुझे लगा कि कुछ ऐसा था जो उन्हें काम करने से रोक रहा था। मेरा अनुमान है कि अगर पुलिस योजना बना लेती और 31 तारीख को ही अंदाजा लगा लेती कि परिस्थिति बिगड़ सकती है तो यह सेना की थोड़ी मदद से आसानी से शान्ति कायम कर सकती थी और यह सब होने से रोक सकती थी।" कमीशन का विचार है कि परिस्थिति का यह मूल्यांकन काफी हद तक सही है।

एक और जगह पर कमीशन ने कहा है कि "पुलिस आम तौर पर सत्ताधारी लोगों की तरफदारी करती है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की देन है।"

इस प्रकार कमीशन ने पुलिस को तो दोषी ठहराया है पर राजनीतिक दबाव के अहम सवाल को टाल दिया है।

सुझाव

कमीशन का दूसरा उद्देश्य था ऐसे कदम सुझाना जिससे ऐसी वारदातें फिर से न हो पाएँ। इस लक्ष्य को नजर में रखते हुए कमीशन ने पहले भाग के दूसरे खण्ड में अपने सुझाव दिये हैं।

यहाँ पर यह कहना जरूरी है कि सामान्य रूप से इन सुझावों का कमीशन की जाँच और उससे निकले निष्कर्षों से कोई सम्बन्ध नहीं है। सुझाव बहुत ही साधारण हैं। कमीशन का लेखन तरह-तरह के फालतू उपदेशों से भरा है, चाहे उनका इस मामले से कोई ताल्लुक हो या न हो। कहीं पर कहा गया है, "सामाजिक अनुशासन के बिना राष्ट्रीय चरित्र निर्माण नहीं हो सकता।" या फिर "पेट भरना सबसे जरूरी चीज है, इसके बिना जीवन असम्भव है।" एक और स्थान पर है "कमीशन को एक सम्भ्रान्त पिता ने बताया कि टी० वी० के कारण उनके बच्चे पढ़ाई में रुचि नहीं ले पा रहे हैं।" या "अतिरिक्त पुलिस कमिश्नर को डी० सी० पी० और उसके नीचे ए० सी० पी० और एस० एच० ओ० कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखना चाहिये।"

मुख्य सुझाव चार भागों में हैं :

(1) **जनशक्ति और पुनर्संगठन** : कमीशन का सुझाव है कि पुलिस चौकियों और कर्मचारियों की संख्या बढ़ाई जाये (हालाँकि रिपोर्ट में पुलिस की भूमिका की कड़ी आलोचना की गई है) आदर्श पुलिस ट्रेनिंग कालेज और स्कूल खोले जाने चाहिये।

(2) **स्वैच्छिक सामाजिक एजेन्सियाँ** : कुछ क्षेत्रों में दंगाई भीड़ों को रोकने में स्वैच्छिक एजेन्सियों के योगदान की सराहना करते हुए कमीशन ने सरकार से सिफारिश की है कि वह ऐसे अन्य दलों को, बनाने में सहयोग दे। (मजे की बात यह है कि नागरिक एकता मंच को जो दंगों के बाद सहायता कार्य करने वाली मुख्य स्वैच्छिक संस्था थी, कमीशन ने अपनी कार्यवाही में भाग लेने से मना कर दिया था)।

(3) **शिक्षा** : कमीशन का सुझाव है कि स्कूली बच्चों को धार्मिक शिक्षा दी जाए जिससे उन्हें नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य सिखाए जा सकें। उन्हें सभ्य बर्ताव, देश प्रेम, त्याग आदि की शिक्षा दी जानी चाहिये।

(4) **जन सम्पर्क माध्यम** : कमीशन का सुझाव है कि फिल्मों और दूरदर्शन पर हिंसात्मक चित्रण नहीं होने चाहिये और आकाशवाणी को अपने प्रोग्राम का ढाँचा बदलकर राष्ट्रीय एकता आदि को बढ़ावा देना चाहिये।

इसके अलावा कमीशन ने स्कूलों, कालेजों, अध्यापकों, पत्रकारों, फिल्म निर्माताओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन और आम जनता के लिए सदाचार की नियमावली बनाई है। रिपोर्ट का अन्त इस उपदेश से होता है : "ऐसे संसार में जहाँ स्तर गिर रहे हैं, पुरानी संस्थाएँ टूट रही हैं और मानवीय गुण नष्ट हो रहे हैं, समाज के हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि सही दिशा में कार्यरत हो। पहले नीचे जाते स्तर को रोके और फिर उसे ऊपर उठाए।"

इन आम उपदेशों के अलावा कमीशन ने चार ठोस सुझाव भी रखे हैं :

(1) **मुआवजा और पुनर्निवास** : कमीशन ने सुझाव दिया है कि विधवाओं और मृतकों के नजदीकी रिश्तेदारों को मिलने वाले मुआवजे की दर 10,000 रुपये से बढ़ाकर 20,000 रुपये कर दी जाए। उन्होंने सरकार से यह सिफारिश की है कि इन्हें रोजगार दिलाने में पूरी मदद की जाए। सरकार ने घोषणा की है कि उसने इन सुझावों को स्वीकार कर लिया है। पर यह ध्यान रखना जरूरी है कि बहुत से अन्य दलों ने जिस व्यापक सहायता और पुनर्निवास की माँग की है उससे यह बहुत कम है।

(2) **दिल्ली में मृतकों की संख्या** : दंगों के पहले दिन से सरकार की विभिन्न एजेन्सियों ने मृतकों की संख्या के बारे में अलग-अलग मत दिये। सरकार द्वारा घोषित सबसे बड़ी संख्या थी 2307 और सबसे कम 10। आज तक भी सरकार की विभिन्न एजेन्सियों के पास एक संख्या नहीं है। संख्या की सही जानकारी एक अहम सवाल है क्योंकि इस पर मृतकों के परिवारों का भविष्य निर्भर करता है। उसी के आधार पर उन्हें सहायता और मुआवजा मिल सकता है। कमीशन ने सही संख्या के विवाद को देखकर ही कहा है कि जिस तरह दिल्ली प्रशासन संख्या में रोज बदल करता है उससे यह लगता है कि अगर सही जाँच की जाए तो मुमकिन है कि संख्या और बढ़ जाए। सरकार ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया है और 23 फरवरी 1987 को इस काम के लिए एक कमेटी बनाई गई। पर बेहद आश्चर्य की बात है कि यह काम दिल्ली प्रशासन के गृह सचिव को ही सौंपा गया है। इस कार्यालय की अक्षमता या शायद जानबूझकर गलत सूचना देने के कारण ही कमीशन ने यह सुझाव दिया था कि संख्या की सही गणना कराई जाए।

(3) **अपराधियों को सजा** : दिल्ली में दंगों से सम्बन्धित कुल 403 एफ०

आई० आर० दायर किये गए थे जिनमें से करीब 200 रद्द कर दिये गए।

केस ठीक से चल रहे हैं। कमीशन का सुझाव है कि सभी केसों की दोबारा जाँच की जाए। सरकार ने इसको भी स्वीकार कर जसटिस एम० एल० जैन की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई है। पर 18 मार्च 1987 को सरकार ने लोकसभा में एकाएक ऐलान किया कि "नवम्बर 1984 में हुए दंगों में संगीन जुर्म करने के लिए 2170 लोगों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही की गई है। (लोकसभा प्रश्न, 18 मार्च 1987) ये कौन लोग थे और इनके ऊपर क्या कार्यवाही की गई यह आज तक रहस्य बना हुआ है। सरकार के इस वक्तव्य का क्या अर्थ है किसी को नहीं मालूम।

(5) **पुलिस का व्यवहार** : 4 नवम्बर 1984 को पुलिस कमिश्नर की जाँच कराने का आदेश दिया गया। फिर 25 नवम्बर 1984 को नए कमिश्नर, वेद मारवाह की नियुक्ति हुई और उन्होंने पुरानी जाँच को रद्द करके एक नई जाँच कमेटी बनाई। इसी कमेटी का हवाला देते हुए दिल्ली प्रशासन ने पी० यू० डी० आर० और पी० यू० सी० एल० की इस मांग का विरोध किया कि दंगों को लेकर जनहित में कानूनी कार्यवाही की जाए। हाइकोर्ट ने भी इस बात से सहमति प्रकट की। बाद में मारवाह कमेटी भी रद्द कर दी गई और यह कमीशन बैठाया गया। अब इस कमीशन ने दोबारा पुलिस के कार्यव्यवहार की छानबीन करने का सुझाव दिया है और इसके लिए सरकार ने जसटिस दलीप कौर के नेतृत्व में दो पक्षीय समिति बनाई है।

इस तरह दिल्ली पुलिस के व्यवहार की जाँच करने के लिए बनाई हर समिति ने किसी-न-किसी रूप में पुलिस को दोषी माना। हर ऐसे अवसर पर एक नई समिति बनी और पुरानी समिति रद्द कर दी गई। वही प्रक्रिया अब फिर से दोहराई जा रही है। इसका अन्त कहां और कब होगा, यह कहना नामुमकिन है।

निष्कर्ष

नवम्बर 1984 का कत्लेआम आजाद भारत के इतिहास में सबसे भयंकर घटना है। पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसने हमारी जनतान्त्रिक संस्थाओं को एक भारी चुनौती दी है क्योंकि यह सत्ताधारियों की करतूतों और लापरवाहियों का ही नतीजा है। यदि यह सम्भव हो, या सम्भव समझा जाने लगे कि सत्ताधारी कानूनी और संवैधानिक मर्यादाओं का उल्लंघन करके सभी बच सकते हैं तो हमारे समाज के संगठित जीवन का भविष्य खतरे में पड़ जाएगा।

ये दंगे और इसके बाद की घटनाएँ एक लम्बी कड़ी का हिस्सा हैं जिसमें—पंजाब में भिंडरांवाला के उदय के बाद की घटनाएँ, सिख साम्प्रदायिक ताकतों का बाहरी ताकतों की मदद से बढ़ना, स्वर्ण मन्दिर में सेना का घुसना, सिख रूढ़िवादियों द्वारा बेकसूर लोगों की हत्याएँ और राज्य और केन्द्र सरकारों की स्थिति को सुधारने में असमर्थता शामिल है।

अगर दंगे कराने वालों को देश के कानूनों से सजा नहीं दी गई तो सिख समुदाय और देश की बाकी जनता, खासकर हिन्दु बहुसंख्यकों के बीच जो खाई बन गई है वह और भी गहरी हो जाएगी।

दंगा पीड़ितों ने संविधान में बताए हर तरीके से न्याय पाने की कोशिश की है। पुलिस, प्रशासन, संसद, कचहरी—हर दरवाजा खटखटाया है पर अभी तक कहीं से भी इनको कोई जवाब नहीं मिल पाया है।

इन असफलताओं के बाद कमीशन की नियुक्ति आशा की किरण की तरह आई थी। पर विडम्बना यह हुई कि कमीशन का काम करने का ढंग ऐसा अजीबो-गरीब था कि जब लोगों ने कमीशन के सामने अपना बयान देना चाहा तो उनकी सुनवाई होना तो दूर उनकी सुरक्षा तक के लिए खतरा पैदा हो गया। पी० यू० डी० आर० और पी० यू० सी० एल० की रिपोर्ट "दोषी कौन" में उन लोगों के तो नाम छपे थे जिन पर दंगों में भाग लेने का इल्जाम था पर यह ध्यान खासतौर से रखा गया था कि पीड़ितों के नाम गुप्त रहें। कमीशन ने ठीक इसका उल्टा

किया। जो दोषी ठहराए गए हैं उन्हें अनाम रखा गया है और जिन्होंने शिकायत की है उनका न सिर्फ नाम बल्कि पता भी छाप दिया गया है। इसके बावजूद भी 600 से ज्यादा लोगों ने, निर्भीकता से बयान दिये। परन्तु अब जब कमीशन ने भी इनकी फरियाद नहीं सुनी तो ये लोग कहाँ जाएँगे?

यह एक अहम सवाल है और इसका सम्बन्ध केवल सिखों तक ही सीमित नहीं है। अधिनियम के अंतर्गत न्यायिक कमीशन एक अर्थ में जनता के लिए ऐसा सांस्थानिक ढांचा है जो और रास्ते असफल होने के बाद जनता द्वारा आजमाया जाता है। पिछले कुछ सालों में कानूनी कमीशन की माँग करना हमारी जनवादी लड़ाई का एक हिस्सा बन गया है। पिछले 30 सालों में 2000 से ज्यादा कानूनी जाँच कमीशन नियुक्त हुए हैं। इस मामले में प्रशासन की टालमटोल और संसद और कचहरी की बेरुखी के बाद कमीशन की असफलता का अंजाम काफी खतरनाक साबित हो सकता है। क्योंकि इसका मतलब है कि जनवाद की रक्षा करने का एक और रास्ता बन्द होता दिखाई पड़ रहा है। रंगनाथ मिश्रा कमीशन का अनुभव यह साफ बता रहा है कि अन्य संस्थाओं की तरह कानूनी जाँच की संस्था भी टूट रही है और इसका कारण बाहरी खतरा नहीं बल्कि अन्दरूनी तोड़फोड़ ही है। यह खतरे की घंटी है जिसकी तरफ सिर्फ सिखों का ही नहीं, हर नागरिक का ध्यान जाना चाहिए।

प्रकाशक : गोविन्द मुखोटी, अध्यक्ष पी० यू० डी० आर० 213 जोर बाग नई दिल्ली-110003
इन्द्र मोहन, अध्यक्ष पी० यू० सी० एल (दिल्ली), एफ-67 भगतसिंह मार्किट नई दिल्ली

सहयोग राशि : 1 रुपया

मई 1987

प्रतियों के लिए : नंदिता हक्सर, सचिव पी० यू० डी० आर०
56 मुनीरका ऐनक्लेव
नई दिल्ली-110067
इन्द्र मोहन, अध्यक्ष पी० यू० सी० एल० (दिल्ली), एफ-67 भगतसिंह मार्किट नई दिल्ली

मुद्रक : सुरुचि मुद्रण, शाहदरा, दिल्ली-110032

घटना क्रम

1984

31 अक्तूबर : प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या। दंगे शुरू

1-3 नवम्बर : शहर में भयंकर मारकाट। लगभग 3000 सिख मारे गये।

17 नवम्बर : पी०यू०डी०आर-पी०यू०सी०एल० की रिपोर्ट 'दोषी कौन' का प्रकाशन

15 नवम्बर : पी०यू०डी०आर-पी०यू०सी०एल० ने जाँच की मांग करते हुए उच्च न्यायालय में जन-हित याचिका दायर किया।

1985

जनवरी : उच्च न्यायालय याचिका के संदर्भ में बेंच का मनमाने तरीके से परिवर्तन।

14 जनवरी : नये बेंच ने याचिका को स्वीकार करने के बारे में मनमाना आदेश दिया।

जनवरी : आदेश के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में स्पेशल लीव पिटीशन दायर।

फरवरी : उच्च न्यायालय ने पिटीशन खारिज कर दिया।

16 अप्रैल : रंगनाथ मिश्रा आयोग नियुक्त।

14 जुलाई : पंजाब समझौते के अनुसार आयोग की जांच के दायरे का विस्तार।

19 जुलाई : मिश्रा आयोग की पहली बैठक।

2 सितम्बर : मिश्रा आयोग की दूसरी बैठक।

1986

10 जनवरी : कमीशन की कार्यवाइयों में शामिल होने के बारे में पी०यू०डी०आर०—पी०यू०सी०एल० का निवेदन अस्वीकृत।

31 मार्च : आयोग की कार्यवाई बन्द कमरे में करने के निर्णय के खिलाफ—सिटीजेन्स जस्टिस कमेटी और अन्य आयोग से अलग हुए।

22 अगस्त : मिश्रा आयोग ने रिपोर्ट दी।

1987

13 फरवरी : आयोग की रिपोर्ट संसद के सामने प्रस्तुत।

14 फरवरी : दंगों में दिल्ली पुलिस की भूमिका की जांच के लिए न्यायाधीश दलीप कौर समिति नियुक्त।